संत रविदास की वाणी में सामाजिक चेतना

डॉ बलबीर सिंह*

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा

***Email ID**: drbalbirsinghdsc@gmail.com*

Accepted: 07.01.2023 **Published**: 01.02.2023

मुख्य शब्दः संत रविदास, सामाजिक चेतना।

शोध आलेख सार

हमारी सामाजिक व्यवस्था जाति और धर्म प्रधान है। 'धर्म, वर्ण, अस्पृश्यता, भेदभाव आदि दुष्चक्रों को खत्म करने के लिए सामाजिक चेतना अपना कार्य करती रहती है। साहित्य के माध्यम से चेतना पल्लवित एवं पोषित होती है। साहित्य ऐसी तमाम समस्याओं का मुकाबला करता है जो सामाजिक समानता में बाधा हो। साहित्य में व्यक्त चेतना के प्रभाववश वंचित समुदाय भी अपने अनुभवों को जगत के सामने ले आता है। अपनी अनुभवों की दास्तान को अभिव्यक्ति देकर ऐसा समुदाय अपने दर्द एवं उत्पीड़न का अहसास सबको कराने का प्रयास करता है। अस्मितामूलक विमर्श का जन्म इसी भाव की देन है। अपने आक्रोश, विद्रोह, विक्षोभ, पीड़ा, अन्याय, संताप आदि को व्यक्त करके वंचित तबका अपने को मुख्यधारा में शामिल करना चाहता है।'[1]

पहचान निशान

**Corresponding Author*

© IJRTS Takshila Foundation, डॉ बलबीर सिंह, All Rights Reserved.

परिचय

हिन्दी साहित्य के स्वर्णकाल 'भक्तिकाल' की निर्गुण परम्परा में संत शिरोमणि संत रविदास जी वाणी हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है जिसमें सामाजिक मानवतावाद एवम् समतावाद का संदेश निहित है। संत रविदास का समय एवम् समाज विभिन्न प्रकार की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक एवम् सांस्कृतिक समस्याओं का समाज था। संत रविदास के समय में मुस्लिम शासकों का वर्चस्व अपने चरम पर है। हिन्दू

समाज हाशिए पर था और सामाजिक दृष्टि से अनेक प्रकार के अविश्वास, रूढ़ियों एवम् आडम्बरों से परिपूर्ण था। 'हिन्दू समाज की दशा अत्यंत निराशाजनक थी। यवन (मुस्लमान) बादशाहों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचार तथा क्रूरता आदि दानवी वृत्तियों ने हिन्दू जाति को और भी तुच्छ बना दिया। धर्मांध मुस्लमान बादशाहों द्वारा अनेक उपास्य देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़ा जाता देख उनका ईश्वरीय विश्वास भी शिथिल हो चला। मुस्लमानों के आक्रमणों के साथ–साथ हिन्दू धर्म का वर्णाश्रम भी दृढ़तर होता गया। परिणामस्वरूप हिन्दुओं और मुस्लमानों के बीच भेद–भावना और भी बढ़ गयी'[2] तत्कालीन सामाजिक स्थिति के बारे में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि "दैनिक जीवन, रीति–रस्म रहन–सहन, पूर्व–त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधा सम्पन्न और असुविधाग्रस्त इन दो वर्णों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा–महाराजा, सुल्तान, अमीर सामंत और सेठ साहूकार आते थे, जिनमें मनमाने ढंग से वैभव प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज–कर्मचारी और घरेलू उद्योग धंधों में लगी सामान्य जनता थी, जो प्रथा का पालन कर संतोष का साँस ले लिया करती थी'।[3] तत्कालीन समाज में जात–पात की स्थिति अत्यत शोचनीय थी। सामाजिक रीति–रिवाजों और परम्पराओं के नाम पर हिन्दू धर्म में बाह्मण समाज ने और मुस्लिम समाज में धार्मिक मुल्लाओं ने निरन्तर भारतीय समाज का धार्मिक शोषण किया। इसी संदर्भ में डॉ प्रवीन काबले का मानना है 'वर्ण व्यवस्था, परिवार, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, सती–प्रथा एवम् नारी की स्थिति, शिक्षा, भोजन, पेय, मनोरजन वेशभूषा, गुलामी प्रथा साम्प्रदायिक कट्टरता का बोलबाला था ।'[4] हिन्दू मुस्लिम के बीच धार्मिक रूप से एक गहरी खाई थी। चूंकि मुस्लमान शासकों का साम्राज्य था इसलिए वे हिन्दू जनता पर मनमाने कर लगाते थे और धर्म के नाम पर उनका शोषण करते थे। इसी प्रकार विपन्न परिस्थितियों में हिन्दू समाज साँसे ले रहा था। इसी परिस्थिति के बारे में आचार्य राचमन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं– 'हिन्दू जनता को हृदय में अभिमान गौरव और उत्साह की भावना लुप्त हो चुकी थी। हिन्दुओं के सामने ही उनके देव मन्दिर गिराए जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे ।'[5]

संत रविदास का समय विचित्र एवम् भयानक सामाजिक परिस्थितियों से गुजर रहा था जिसमें हिन्दू–मुस्लिम में आपसी तनाव और घृणा का वातावरण था । धर्म के ठेकेदारों पंडित, पंडो, पुरोहितों और मुल्लाओं ने आम आदमी का जीना दूभर बना दिया था। धार्मिक विकृतियों ने खास द्वारा आम आदमी के शोषण को बढ़ावा दिया था। फलस्वरूप आम जनता की मानसिक, सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। 'उस समय प्रमुख मत थे– हिन्दुत्व एवम् इस्लाम । इसके अतिरिक्त बौद्ध एवम् जैन मतों के विकृत रूप भी विद्यमान थे। इन प्रमुख मतमतान्तरों में आडम्बर और मिथ्याचारों का बोलबाला था। हिन्दुओं में ब्राह्मणों का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। इससे उनमें सदाचार प्रवणता लुप्त होने लगी थी और वे अपने पद का दुरुपयोग करने लगे थे।'[6]

संत रविदास के समाज में वर्ण–व्यवस्था ब्राह्मण समाज के लिए हितकर और शुद्रों के प्रति उपेक्षा, गरीबी एवम् स्वाभिमान को खत्म करने वाली थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवम् वैश्य वर्णीय शुद्र वर्ण के लोगों को

हेय की दृष्टि से देखते थे। उनका अपमान वे किसी भी स्थान और किसी भी समय कर सकते थे। शूद्रों ने इस प्रकार की सामाजिक स्थिति को अपनी नियति मान लिया था। जाति के नाम पर ब्राह्मणों ने अपने को श्रेष्ठ और शूद्रों को निष्कृष्ट मान लिया था। वे समाज और धर्म के ठेकेदार बन बैठे थे 'हिन्दू मत में ब्राह्मणों ने अपने को बचाने के लिए धर्म के नियमों को कड़ा किया । जाति–पाति की समस्या के क्षेत्र में वे और संकीर्ण हो गए, क्योंकि ऐसा करने से उनकी गद्दी सुदृढ़ होती थी।'[7] हिन्दू मत में शूद्रों को वेद, शास्त्र आदि को पढ़ने की इजाजत नहीं थी. इतना ही नहीं अन्त्यजों के लिए तो देवदर्शन के लिए मन्दिर प्रवेश भी निषिद्ध था।'[8]

इस प्रकार भारतीय इतिहास का मध्यकाल एवम् हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल अत्यन्त शोचनीय सामाजिक स्थिति में था। धर्म और जाति के नाम पर ब्राह्मणों और मुल्लाओं ने हिन्दू और मुस्लिम धर्म की दरिद्र जातियों का सामाजिक, आर्थिक एवम् धार्मिक शोषण किया। हिन्दू धर्म में शूद्रों की स्थिति नरकतुल्य थी। उनके द्वारा किया गया दान तो ब्राह्मणों को कबूल था परन्तु उनका स्पर्श कबूल नहीं था । इसके विपरीत किसी शूद्र नारी के साथ अनैतिक सम्बन्ध तो मंजूर था परन्तु उससे शादी करना उन्हें मजूर नहीं था। इस प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा आम व्यक्ति का शोषण जारी था। वस्तुतः भारतीय समाज धार्मिक एवम् सामाजिक चेतना की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों से गुजर रहा था। तत्कालीन समाज अत्यन्त दूषित परिस्थिति में जी रहा था। इस प्रकार के दूषित एवम् संघर्षपूर्ण वातावरण में संत रविदास जी की वाणी में एक मानवतावादी एवम् सामाजिक चेतना स्वर विद्यमान था। उनके विचार समाज की दूषित व्यवस्था का पर्दाफाश कर रहे थे, बल्कि समाज में एक मानवतावादी सामाजिक चेतना विकास भी कर रहे थे।

संत रविदास सम्पूर्ण मानवता को समतावाद का संदेश देते हैं। वे जाति–पाति एवम् वर्ण व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। ब्राह्मण जाति में पैदा हुए मनुष्य को वे ब्राह्मण नहीं मानते थे। जाति के स्थान पर उन्होंने कर्म को महत्वपूर्ण माना है।

'ऊँचे कुल के कारण, ब्राह्मण कोय न होय।
जड जानहि ब्रह्म आत्मा, रविदास' कहे ब्राह्मण सोय।।' [9]

अर्थात् व्यक्ति का जन्म ऊँचे कुल में जन्म से लेने ब्राह्मण नहीं होता, बल्कि परमात्मा को जानने वाला ही ब्राह्मण होता है। जिसकी आत्मा में परमात्मा निवास करता है । 'शूद्र' की परिभाषा देते हुए भी संत रविदास की वाणी का विचार है।

'रविदास जउ अति पवित्र है सोई सूदर जान।
जउ कुमरनी असुध जन. तिन्ह ही न सूदर मान।।'[10]

तत्कालीन समाज में जब जातिवाद अपने चरम पर था तब संत रविदास ने अपनी वाणी में विचार किया है कि जातिवाद मनुष्यता के लिए एक ऐसा रोग है, जो निरन्तर मानवता को खा रहा है।

'जात पातं के फेर महि उरझि रहइ सब लोग ।

मनुष्यता को खात हइ रविदास जात का रोग'।। [11]

जात–पात को संत रविदास जी बेकार का विवाद मानते हैं। चूंकि समाज में कोई ऊँचा या नीचा नहीं है और सभी परमात्मा के बनाए हुए हैं इसलिए कभी भी किसी से उसकी जाति नहीं पूछनी चाहिए।

'जन्म जात मत पूछिए, का जात और पात।
'रविदास पूत सभ प्रभु के कोउ नहि जात कुजात।।'[12]

संत 'रविदास' का मानना है कि जन्म से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता, बल्कि कर्म से व्यक्ति ऊँच या नीच होता है। उसके बुरे कर्म ही उसे नीच बनाते है ।

'रविदास' जन्म के कारण होत न कोउ नीच
नर कूं नीच करि डारि है, आंछे करम की कीच ।।'[13]

मूर्तिपूजा और सामाजिक आडम्बरों और सामाजिक रूढ़ियों की सत रविदास ने खुलकर आलोचना की है। वे किसी मन्दिर मस्जिद में परमात्मा नहीं मानते, बल्कि उन्हें कण–कण में परमात्मा का वास लगता है ।

'रविदास' न पुजइ देहरा अरु ना मसजिद जाय।
जहं तहं ईस का बास है, तहं तहं सीस निवाय।।'[14]

हिन्दू समाज में तीर्थ यात्रा के माध्यम से परमात्मा के दर्शन करना मिथ्याचार है। इसी सन्दर्भ में रविदास जी का मानना है :

'का मथुरा का द्वारिका का कासी हरिद्वार।
'रविदास' खोजा दिल अपना, तउ मिलिया दिलदार।।'[15]

पशु बलि एवम् नर बलि हिन्दू मुस्लिम समाज की क्रूरतम कुप्रथा है। नर बलि एवम् पशु बलि देकर हिन्दू और मुस्लिम अपने काम सवारने चाहते हैं। संत रविदास इस प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति का विरोध करते हैं ।

'रविदास' जीव यू मारि कर कैसो मिलहिं खुदाय ।
पीर पैगम्बर औलिया, कोउ न कहूए समुझाइ ।।'[16]

अर्थात् संत रविदास का मानना है कि जीव हत्या करके परमात्मा कैसे मिल सकता है। पीर पैगम्बर आदि किसी ने भी ऐसा नहीं समझाया है।

संत रविदास ने अपने सम्पूर्ण जीवन में सत्य को अपनाया भी है और भोगा भी है। उनके काव्य में सत्य अभिव्यक्ति पर बल दिया गया है। वे सांसारिक सुखों को असत्य एवम् मिथ्या मानते हैं। सत्य में भी उन्हें ईश शक्ति दिखाई देती है।

'संत सक्ति सो होत है, सभी पापन का नास
बधिरा सत सौ बोध लेइ सत् भाषै रविदास।।'[17]

मदिरा सेवन का विरोध करते हुए सत रविदास जी बताते हैं कि मदिरा सेवन का नशा तो क्षणिक होता है इसलिए नशा करना है तो परमात्मा के नाम रस का करना चाहिए।

'रविदास मंदिरा का पीजियै, जो चढ़ै–चदै उतराय ।
नाम महारस पीजिए जौ चढे नाह उतराय।।'[18]

हिन्दू–मुस्लिम तनाव तत्कालीन परिस्थितियाँ एक बड़ी समस्या थी और आधुनिक परिवेश में साम्प्रदायिक तनाव एक भयानक समस्या का रूप ले चुका है। साम्प्रदायिक दंगों का बड़ा कारण हिन्दू मुस्लिम के बीच का तनाव ही है। अतः सत रविदास ने दोनों के बीच दोस्ती एवम् भाईचारे का सन्देश देते हुए कहा है कि

'मुस्लमान सो दोस्ती, हिंदुअन सों कर प्रीत
'रविदास' जोति सम राम की सम है अपने मीत।।'[19]

निष्कर्ष : अतः कहा जा सकता है कि संत रविदास की वाणी में सामाजिक चेतना अपने सर्वोत्तम रूप में अभिव्यक्त हुई है। तत्कालीन परिस्थितियों से लेकर आधुनिक परिवेश तक संत रविदास सामाजिक चेतना के पक्षधर रहे हैं। उनका मानना है कि अगर हम सामाजिक रूप से चेतनावस्था में है तो समाज को व्यवस्थित कर सामाजिक प्रदुषण को समाप्त कर सकते हैं। उन्होंने जातिवाद, वर्णव्यवस्था, ऊँच–नीच, छुआछूत, वर्गभेद, हिन्दू–मुस्लिम तनाव, असत्य, बाह्यडम्बर, नरबलि, पशुबलि और साम्प्रदायिक कट्टरता का विरोध कर एक आदर्श समाज की नींव डाली है। उन्होंने समाज में एक ऐसी चेतना का प्रादुर्भाव किया जिसके माध्यम से जीवन में मानवता, समता, एकता, स्वतंत्रता, विश्वबंधुता एवम् सामाजिक न्याय का संदेश देती है । वस्तुतः संत रविदास न केवल एक भक्त, संत, विचारक, कवि, दार्शनिक थे बल्कि एक सामाजिक संचेतना के संवाहक भी थे। रविदास जी वाणी सम्पूर्ण विश्व में एकता और भाई–चारे का संदेश देती है । आज के घृणा और नफरत के वैश्विक परिवेश में जिसकी विशेष आवश्यकता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा — इक्कीसवीं सदी के प्रथम दषक की दलित कविता पृ.–9 साहित्य संचय प्रकाशन दिल्ली–2021
2. डॉ. प्रवीण कांबले — निगुर्ण काव्य में सामाजिक चेतना, पृ.–89 अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन–2013
3. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी : — उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ.–239 भारतीय भण्डार इलाहाबाद– 1964
4. डॉ. प्रवीण कांबले : — निगुर्ण काव्य में सामाजिक चेतना, पृ.–92 अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रकाशन–2013
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : — हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ–63 नगरी प्रचारिणी सभा काशी, 1963

6. डॉ. एन सिंह (सम्पादक) रैदास ग्रंथावली पृ– 78
साहित्य संस्थान गाजियाबाद–2003
7. डॉ उमेश कुमार सिंह (सं.) गुरुनानक देव और सत रविदास, पृ–31
8. डॉ उमेश कुमार सिंह (सं.) गुरुनानक देव और सत रविदास, पृ–31
9. वियोगी हरि. (स.) सत बाणी पृ. 94
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली–2001
10. निशान साहिब श्री गुरु रविदास दर्शन एवम् मीरा पदावली रविदास
चेरिटेबिल ट्रस्ट, जलंधर– 2000
11. निशान साहिब श्री गुरु रविदास दर्शन एवम् मीरा पदावली रविदास
चेरिटेबिल ट्रस्ट जलधर–2000
12. वही, पृ.–106
13. वही, पृ.–97
14. वही, पृ.–97
15. वही, पृ.–143
16. वही, पृ.–90
17. वही, पृ.–92
18. वही, पृ.–108
19. वही, पृ.–108